P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-7* March- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आनन्द : एक दार्शनिक विवेचन

अनीता नैन
सहायक प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
सेठ बनारसी दास शिक्षण महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

सारांश

भारतीय तत्त्वदर्शन में ज्ञान आनन्द का कारण माना गया है। उपनिषदों में दर्शाया गया ब्रह्मज्ञान जो आनन्द का कारण है, उसी ब्रह्मज्ञान के सदृश काव्य से प्राप्त रसास्वाद को ब्रह्मानन्द माना गया है। आनन्द एक अनिर्वचनीय अनुभूति है किन्तु दार्शनिक मतानुसार आनन्द अनेक प्रकार से प्राप्त हो सकता है। हमारे पूर्वजों ने संसार में आनन्द पाने के लिए यज्ञकर्म को अपनाया, उनके अनुसार आनन्द का स्रोत यज्ञ है और यज्ञ का परिणाम आनन्द है। नदियाँ जैसे समुद्र में विलीन होकर सम्पूर्ण आनन्द को पाकर अपने नाम और रूप को भी उसमें मिला देती है, ऐसे ही यजमान अपनी आत्मा को उस समुद्ररूप अग्नि में मिलाकर अपने भौतिक स्वरूप को भूलकर आनन्दमग्न हो जाता है।

मुख्य शब्द : आनन्द, दार्शनिक विवेचन, ब्रह्मानन्द, आध्यात्मिक

प्रस्तावना

'आनन्द' शब्द प्रसन्नता का पर्याय है, जिससे दुःख का अभाव होकर एक सकारात्मक अनुभूति होती है। आनन्द केवल मनोभाव मात्र नहीं है अपितु सुख की वह चरमावस्था है जहाँ परम शान्ति का अनुभव होता है। आनन्द के दो रूप लोकप्रचलित हैं – भौतिक आनन्द और आध्यात्मिक आनन्द। सामान्यतः लोक में भौतिक सुखों को ही आनन्द माना जाता है किन्तु दार्शनिक जगत में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति ही परमानन्द है। 'आनन्द' की इस दार्शनिक व्याख्या से पूर्व इसके सामान्य अर्थ को जानना आवश्यक है।

'आनन्द' का सामान्य अर्थ

'आनन्द' शब्द आ + नन्द् + घञ् में प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है – प्रसन्नता, हर्ष, खुशी, सुख, ईश्वर अथवा शिव।[1] सामान्यतया हम आनन्द को इसी रूप में जानते हैं। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त इसी आनन्द की खोज में रहता है। एक शिशु के लिए माता की गोद अति आनन्ददायक होती है। उसके लिए वह परम सुख है। जैसे–जैसे वह बड़ा होता है, उसका प्रिय खिलौना उसे आनन्द देने लगता है। किशोरावस्था में दिवास्वप्न उसे आनन्दित करते हैं और युवावस्था में अनेक कामनाएँ उसे आनन्द का पर्याय लगने लग जाती है।। मनुष्य इसी 'आनन्द' की खोज में भटकता हुआ वृद्धि हो जाता है लेकिन मृगमरीचिका की भाँति यह उसे अपने पीछे दौड़ता रहता है। एक इच्छा की पूर्ति के बाद दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है और यह आनन्दानुभूति परिवर्तित होती रहती है। यह भौतिक आनन्द है जो अनेक रूपों में भासित होता है। जैसे – भूख, प्यास, निद्रा, वासना इत्यादि। प्रत्येक मनुष्य के लिए इसका अर्थ अलग – अलग है। कोई व्यक्ति भौतिक सुखों के उपभोग को आनन्द मानता है तो कोई दान, सेवा आदि के द्वारा आनन्दित होता है। किन्तु दार्शनिक क्षेत्र में 'आनन्द' एक विलक्षण अनुभूति है, जिसे ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द कहा जाता है। मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है इसी परमानन्द को प्राप्त करना। इसी परमानन्द की व्याख्या विभिन्न दर्शनों में भिन्न–भिन्न रूप में मिलती है। जिसका वर्णन अग्रिम पंक्तियों में किया जा रहा है–

चार्वाकदर्शन में 'आनन्द'

चार्वाक दर्शन के अनुसार सांसारिक भोग एवं इन्द्रियजन्य सुख ही परमानन्द है। इनके अनुसार भौतिक कारणों से उत्पन्न दुःख ही नरक हैं।[2] इस शरीर में भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी आदि दुःख के कारण हैं। वैदिक दर्शन में मोक्ष को सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ माना गया है किन्तु इनके विपरीत चार्वाकदर्शन में काम को ही परम पुरुषार्थ माना गया है। इन्होंने स्त्री आदि के आलिंगनादि से उत्पन्न सुख को पुरुषार्थ माना है।[3] चार्वाक दर्शन दुःख को सुख के साथ मिश्रित मानता है। इस संसार में सभी सुख दुःखों से युक्त हैं। जैसे मछली चाहने वाला व्यक्ति छिलके और कांटों के साथ ही मछलियों को पकड़ता है किन्तु जो ग्रहण करने

योग्य है, उसे ग्रहण करके अतिरिक्त का त्याग कर देता है। अतः हमें दुःख को त्यागकर सुख का भोग करना चाहिए। विघ्नों के भय से सुख का त्याग करने वाला व्यक्ति मूर्ख है। उनके अनुसार यह मूर्खों का विचार है कि सुखों का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि उनकी उत्पत्ति सांसारिक विषयों के साथ होती है। आनन्द को प्राप्त करने के लिए इन्होंने प्रत्येक मार्ग को उचित माना है। उनकी प्रमुख उक्ति है– ''जब तक जीएँ, सुखपूर्वक जीएं। अपने पास धन न हो तो भी ऋण लेकर घी पीएँ।''[4] ऋण लौटाने की व्यर्थ चिन्ता न करें क्योंकि शरीर के भस्म हो जाने पर जीव का पुनरागमन अर्थात् पुनर्जन्म नहीं होता। इन्होंने शरीर के नष्ट होने पर पूर्णरूप से दुःखनिवृत्ति अर्थात् मोक्ष माना है। इस प्रकार चार्वाकदर्शन में आनन्द सर्वत्र है।

वैदिक दर्शन में 'आनन्द'

वेदान्त दर्शन वैदिक आनन्दवाद का विस्तृत स्वरूप प्रस्तुत करता है। 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'आनन्दमयःप्रधनस्य', 'आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्' आदि वेदान्त वाक्य आनन्द को अनेक रूप में सिद्ध करते हैं। वृहदारण्यकोपनिषद् में 'आनन्द वै सम्राट् परमं ब्रह्म' के रूप में याज्ञवल्क्य ने जनक के समक्ष आनन्द की ब्रह्मरूपता प्रस्तुत की।[5] तैतिरीयोपनिषद् में परमात्मा की विराट सृष्टि में आनन्द के एकादश स्तर किए गए हैं। ये हैं–

1. मानुषानन्द
2. मनुष्यगन्धर्वानन्द
3. देवगन्धर्वानन्द
4. पितृलोकानन्द
5. आजानजानन्द
6. कर्मदेवानन्द
7. देवानन्द
8. इन्द्रदेवानन्द
9. बृहस्पत्यानन्द
10. प्रजापत्यानन्द
11. ब्रह्मानन्द।[6]

इसी ब्रह्मनन्द को परमानन्द, अखण्डानन्द, पूर्णानन्द, नित्यानन्द, दिव्यानन्द जैसे विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है।

आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म एक ऐसी सर्वव्यापक सत्ता है जो जगत के कण–कण में व्याप्त है तथा जो निराकार, निर्विकार, अविनाशी, अनादि, चैतन्य तथा आनन्दस्वरूप है। ब्रह्म स्वयंप्रकाश, कूटस्थ, नित्य, निरवयव, सत्, चित्त, आनन्द अर्थात् आनन्दरूप है।[8] यही एकमात्र परमतत्त्व ब्रह्म ही परमार्थसत्य है। योग साधना द्वारा साक्षात् ब्रह्म की प्राप्ति की जा सकती है। श्वेताश्वरोपनिषद् में योगाभ्यास द्वारा प्राप्य शारीरिक चमत्कारों को वर्णित करते हुए कहा गया है –''जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों से उत्पन्न होने वाला योग का पंचांग प्रभाव पूर्ण रूप से परिस्पफुट प्रक्रिया का स्वरूप धरण कर लेता है तो योग साधक को रोग, जरा, मृत्यु आदि सब भय दूर हो जाता है क्योंकि उसका शरीर योगाग्नि से ओत–प्रोत होता है। उसका शरीर बहुत हल्का हो जाता है, वह पूर्ण आरोग्य तथा वासना मुक्त हो जाता है। उसका वर्ण उज्ज्वल और कान्तिमय हो जाता है और स्वर बड़ा मधुर हो जाता है। उसके शरीर से सुगन्ध निकलने लगती है। इन्हीं चिह्नों से पता चलता है कि योग–साध्क का अभ्यास पूर्णता की ओर बढ़ रहा है।''[9]

मुण्डकोपनिषद् में इस आनन्दावस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है– ''जब पूर्णयोगी में आत्मा के साथ शरीर के साथ एकरूपता का स्थान ले लेती है तो शारीरिक सुख की समस्त वासनाओं का शीघ्र लोप हो जाता है। पुनः उसके हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, उसके संदेह छिन्न हो जाते हैं, उसके कर्मफलों का नाश हो जाता है तथा वह परात्पर साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है।''[10]

इस प्रकार आनन्द हमारी आत्मा में है। यदि विश्व का शासन भौतिक शक्तियों के नियमों द्वारा ही होता तो कहीं कुछ भी हमारे लिए आनन्दप्रद न होता। उपनिषदों का भी यही कथन है कि आनन्द से, आनन्द के अध्यात्म तत्त्व से सब भूत निकले हैं और उसी में उनकी स्थिति है। अतः द्वन्द्वों के रहते हुए भी जीवन में हमको आनन्द मिलता है। कहा भी गया है कि अनन्त सत्य का अविष्करण आनन्दरूपी अमृत्यु में होता है।[11] हमें स्वयं को इस योग्य बनाना होगा कि 'आनन्दरूपम् अमृतम्'' मृत्युविहीन आनन्द की मूर्ति बन जाए और हमारे भीतर का अनन्त गूढ़ और अदृश्य न रह सके। आत्मा को अपना आनन्दरूप उस क्षण प्राप्त होता है जब उसे सत्य का दर्शन होता है, जो अपने से अतीत है, उसी प्रकार जैसे दीप से प्रकाश निकलकर उसकी सीमाओं के बाहर दूर तक चला जाता है और सूर्य से अपने रिश्ते की घोषणा करता जाता है।[12] वैतिरियोपनिषद् में पंचकोशों की व्याख्या करते हुए कहा गया है–

अन्न प्राण मनोमय विज्ञानानंदं पचकोशानाम् ।
एकैकान्तभाजां भजति विवेकात्प्रपश्यतामात्मा ।।

शंकराचार्य ने तैतिरीयोपनिषद् के भाष्य[13] में लिखा है ''आनन्द विद्या और कर्म का फल है– आनन्द इति विद्याकर्मणोः पफल।.....विद्या और कर्म भी प्रिय आदि के लिए ही है ..... प्रिय पदार्थ की प्राप्ति से होने वाला हर्ष प्रकट होने पर प्रमोद कहा जाता है।'' तैत्तिरीय उपनिषद् पढ़ना अपने आप में प्रत्यक्ष आनन्द है। यहाँ ऋग्वेद की आनन्दवान अभिलाषा का विस्तार है। कहते हैं– ''चेतन से आकाश पैदा हुआ, आकाश वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष पैदा हुआ। यह पुरुष अन्नमय हैं।'' यहाँ सृष्टि का विकासवादी सिद्धांत हैं। फिर कहते हैं ''अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है। वह अन्न से जीवित रहती है, अन्न में लीन होती है। अन्न प्राणियों का ज्येष्ठ है– ''अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्।'' पिफर कहते हैं कि ''अन्नमय शरीर के भीतर प्राणमय शरीर है।'' प्राण के बारे में कहते है ''प्राण ही आयु है– प्राणोहि भूतानां आयुः। इस प्राणमय शरीर के भीतर मन है। शंकराचार्य के भाष्य में मनोमय का अर्थ है ''मन इति संकल्पाद्दात्यकमन्तः करणं–संकल्प आदि विकल्प से युक्त अन्तः करण ही मन है।'' इसके भीतर विज्ञानमय कोष है। ''श्रद्धा इसका सिर है, ऋण दक्षिण भाग है और सत्य

उत्तर भाग है। योग मध्य भाग और महत्तत्व पृष्ठ भाग है।'' विज्ञान के गुण बताते हैं–''विज्ञान कर्मक्षेत्र का विस्तारक है। सभी देवता विज्ञान को ज्येष्ठ ब्रह्म की तरह उपासते हैं। विज्ञान ब्रह्म है – ''विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेदं।'' विज्ञानमय अंतःकरण पहले बताए गए मनोमय का अंतः भाग है। इस विज्ञानमय कोष–शरीर के भीतर 'आनन्दमय' कोष है–''एतताद्वि ज्ञानम यादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः।''

हम सब आनन्द चाहते हैं। वैदिक ऋषियों ने भी आनन्द के ढेर सारे स्त्रोत और उपकरण खोज लिए है। ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रंथ है। इसकी वाणी भी आनन्द का स्रोत है। मधुर बोलना और सुनना आनन्ददायी है। तमाम खाद्य पदार्थ स्वादिष्ट होते हैं, मधु, दुग्ध और घी ऐसे ही हैं लेकिन ऋषि अनुभूति में वाणी भी स्वादिष्ट है ''उच्यते वचः स्वादोः स्वादीयः।'' माधुर्य आनन्ददाता है। मानवता हितैषी भी है। मन माधुर्य आनन्द का स्त्रोत है। आनन्द के प्रतिष्ठित देवता हैं–सोम। 'सोम' वैसे भी आनन्दवर्द्धक पेय है। लेकिन काव्य सर्जन में वह रचनाशीलता का आनन्द है। दर्शन और प्रगाढ़ भाव में वह आनन्ददाता है। बताते हैं कि ''यह सोम आनन्द को जन्म देने वाला है – सोमेन आनन्दं जनयन्।'' सोम की स्तुति है ''हे सोम! आप वरूण को आनन्दित करते हैं, इन्द्र को आनन्द देते हैं, मरूतों को, विष्णु को और सभी देवों को आनन्दित करते हैं।'' आनन्द वैदिक समाज की प्रकृति है। एक मन्त्रा में 'आनन्द, मुद, मोद, प्रमोद' चार शब्दों का प्रयोग है। यह आनन्द आखिरकार है क्या?

आनन्द व्यक्तित्व की अंतिम पर्त है। आनन्द भीतर है। हमारा ही भाग है। हमारे सारे कर्म और प्रयास आनन्द पाने के लिए ही होते हैं। इसी की प्यास का दर्शन है – सच्चिदानंद। सत् चित् और आनन्द की तिकड़ी ही सच्चिदानंद है। आनन्द की परिपूर्णता परमानंद है। उपनिषद् के ऋषियों के लिए यही ब्रह्मानंद है। तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगुवल्ली में वरूण ने प्रिय पुत्र को आनन्द प्राप्ति का ज्ञान दिया। भृगु ने ज्ञान प्राप्ति के लिए कठोर तप किया। ''अन्न को ब्रह्म जाना फिर तप किया। प्राण को ब्रह्म जाना पिफर तप किया मन को ब्रह्म जाना, पिफर विज्ञान को ब्रह्म और अन्त में ''आनन्दो बह्येति व्यजानत, आनन्दायेव –खल्विमानि, भूतानि जायन्ते, आनन्देन जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति – आनन्द को ब्रह्म जाना कि आनन्द से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं और मृत्यु के समय आनन्द में ही समा जाते हैं।'' आनन्द सृष्टि का मूल केन्द्र है। वही सृष्टि विकास का नियन्ता है। वही जीवन है। वही मृत्यु है।

सांख्य एवं योगदर्शन में आनन्द

सांख्य एवं योग दोनों ही दर्शनों में दुःख या क्लेश का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन हुआ है। इस दुःख का अन्त ही आनन्द की प्राप्ति है। सांख्यदर्शन में दुःख को तीन प्रकार का माना है –आत्मिक, भौतिक और दैविक और इन्हें दुःखत्राय की संज्ञा दी है। आत्मिक दुःख व्यक्ति के आन्तरिक, शारीरिक एवं मानसिक कारणों से उत्पन्न होता है। भौतिक दुःख जो प्राणियों, मनुष्यों आदि के कारण प्राप्त होते हैं। दैविक दुःख देव, यक्ष, राक्षस, भूतप्रेत एवं ग्रह आदि के प्रकोप के कारण होते हैं। यद्यपि इन दुःखों का विनाश पूर्ण रूप से असम्भव है किन्तु इनकी एकान्तिक या आत्यान्तिक निवृत्ति का उपाय भी है।[14] सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण ये त्रिगुण क्रमशः सुख, दुःख एवं मोह देने वाले होते हैं। व्यक्ति को तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने पर धर्म, अधर्म, अज्ञानादि निवृत्त हो जाते हैं और अपवर्ग की प्राप्ति होती है। यही आनन्द की अवस्था है।

योगदर्शन में भी महर्षि पतंजलि ने योग के द्वारा क्लेश अर्थात् दुःख की निवृत्ति का उपाय बताया है। उन्होंने राग को सुख की और द्वेष को दुःख की वृत्ति माना है। इनकी व्याख्या करते हुए उन्होनें कहा है,''जो मनोवृत्ति सुख के आधर पर रहती है, उसे राग कहते हैं''[15] आगे कहा गया है–''जो मनोवृत्ति दुःख के आधर पर रहती है, उसे द्वेष कहते हैं।''[16]

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश – ये पंच क्लेश माने गए हैं। इनमें अविद्या स्वयं क्लेश है और यह अस्मितादि अन्य क्लेशों की प्रसवभूमि है। अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना अविद्या है।दृक्शक्ति पुरुष और दर्शनशक्ति बुद्धि को एकात्म मानना अस्मिता है। सुखो भोग के पश्चात् अन्तःकरण में रहने वाला अभिलाष विशेष राग है। दुःख के प्रति दुःखनाश विषयक प्रतिकूल भावना अर्थात् क्रोध होता है, वह द्वेष है। मृत्यु का भय अभिनिवेश है।

महर्षि पंतजलि के अनुसार चित्तवृति का एकाग्र होना ही योग है। योग में चित्त की वृत्तियों को समेटकर एक स्थान पर एकाग्र किया जाता है और अन्त में जिस केन्द्र पर यह एकाग्र किया जाता है वहाँ प्रकाश दिखाई देता है, जो आनन्द की अवस्था है।

बौद्ध एवं जैनदर्शन में आनन्द

बौद्ध दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है– दुःख–निरोध गौतमबुद्ध ने समस्त दुःखों से छुटकारा पाने के लिए चार आर्यसत्यों का उल्लेख किया है। जन्म, जीवन–मरण प्रायः सभी दुःख से भरे हैं। इन चार आर्य सत्यों के द्वारा सभी आस्रवों को जीतकर मनुष्य परम शान्ति अर्थात् निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। दुःख का कारण है–तृष्णा और निर्वाण के द्वारा तृष्णा का निरोध अर्थात् निवृत्ति हो जाती है। बौद्धदर्शन में नित्यता का निषेध करके समस्त जगत के सम्पूर्ण पदार्थों को अनित्य बताया गया है। जब तक हम सांसारिक पदार्थों को नित्य मानते रहेंगें तब तक दुःखों से मुक्ति नहीं पा सकते। अतः इनकी अनित्यता मानकर दुःखनिवृत्ति ही इसका उपाय है।

इसी प्रकार जैन धर्म भी 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की कामना करता है। इसके अहिंसा, अपरिग्रह, स्याद्वाद जैसे सिद्धान्त मानव के कल्याण और आनन्द की रक्षा के लिए ही हैं। इन्होंने सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को पंचव्रत की संज्ञा दी और इस आचार–पालन का लाभ बताया। इनके पालन से मानसिक तनाव से मुक्ति और आन्तरिक भावों की शुद्धि होती है, जिससे जीवन में आनन्द का संचार होता है। महावीर स्वामी ने लोककल्याण और मोक्षप्राप्ति में महाचार को पालन करने का उपदेश दिया।

इस प्रकार भारतीय दर्शन में पदे–पदे दुःख निवृत्ति और आनन्द प्राप्ति के उपाय उल्लिखित हैं।

आवश्यकता है उन्हें जीवन में अपनाकर यथार्थ आनन्द को प्राप्त करके जीवन को सार्थक बनाने की।

निष्कर्ष

जो व्यक्ति अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थिर हो गया है, वह धन्य है। वह अविद्या के अन्धकार से निकलकर आनन्द, उत्साह और आशा के प्रकाश में आ गया है। आनन्द तत्त्व की आराधना से मनुष्य का आन्तरिक एवं ब्राह्य जीवन संतोष से परिपूर्ण हो जाता है। उसे यह स्वयं अनुभव हो जाता है कि सच्चा सुख भौतिक साधनों में नहीं अपितु संयम एवं ध्यान योग साधना में है। इसके लिए हमें संकल्प लेना होगा कि दुश्चिन्ताओं और कृत्रिम जीवन शैली को त्याग कर आनन्द तत्त्व के साधक बने। जीवन में सदैव आशावादी दृष्टिकोण अपनाएं। स्वयं भी प्रपुफल्लित रहें और दूसरों को भी हंसने की प्रेरणा दें। आनन्द हमारे अन्तर में है, जो व्यक्ति उसे बाहर ढूढ़ते हैं, वे गलती पर हैं। जीवन का प्रमुख लक्ष्य आनन्द प्राप्ति है। हमें आनन्द प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयासरत रहना चाहिए। जिस व्यक्ति को सच्चा आनन्द नहीं प्राप्त हुआ, वह जीवन भर कोल्हू के बैल की तरह संसार चक्र में घूमता रहता है।

वैदिक उद्घोष है– ''अमृतं विवासत।''[17] अर्थात् उत्साही और आशावादी का ही साथ कीजिए। उन कायरों को दूर रखिए जो आपको डरपोक और निराशाजनक बनाते हैं। अथर्ववेद में भी आशावाद की पुष्टि में अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं यथा–''उद्यानं ते पुरुष नावयानम्''[18] अर्थात् सदैव उन्नति कीजिए। गिराने वाले नहीं, जीवन को उत्तरोत्तर उठाने वाले पुष्ट विचारों और सत्यकार्यों को अपनाइये। आगे भी कहा है– ''वीरयध्यं प्र तरता।''[19] अर्थात् इस संसार सागर में उद्योगी ही पार होते हैं। अतः पुरुषार्थयुक्त जीवन ही स्वस्थ और आनन्दपूर्ण हो सकता है। यह जीवन बहुमूल्य है अतः सदैव आनन्द और सुखपूर्वक जीवन जीएं। 'यह जीवन और जगत् आनन्दमय है' सदैव यही भावना रखें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 149*
2. *कण्टकादिजन्यं दुःखमेव नरकः, सर्वदर्शन संग्रह, पृ. 8*
3. *अंघैनाद्यालिंगनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः, वही, पृ. 5*
4. *यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्णं कृत्वा घृतं पीबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।, वही, पृ. 3*
5. *बृहदारण्यकोपनिषद्, 4.3.34*
6. *तैत्तिरीयोपनिषद्, 2.8*
7. *''पृथिव्याप्तेजो{निलखे समुत्थिते पंचात्मके ..... /'' श्वेताश्वरोपनिषद, 2.13*
8. *''भिद्यते हृदयाग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया ..... /'' मुण्डकोपनिषद्, 2.2.8*
9. *वही, 2.2.7*
10. *चन्द्रबली त्रिपाठी, उपनिषद् रहस्य, पृ. 155*
11. *ऋग्वेद, 1.114.6*
12. *ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 979*
13. *वही*
14. *दुःखत्रायाभिधतज्जिज्ञासा तदपघातके हेतो। सांख्याकारिका, ।*
15. *सुखानुशयी रागः, पांतजल योगसूत्रा, 1.7*
16. *दुःखानुशयी द्वेषः, वही, 1.8*
17. *द्रष्टव्य – ऋग्वेदभाष्य*
18. *अथर्ववेद – 8/1/6*
19. *वही, 12/2/26*